**ओ३म्**

**“ऋषि दयानन्द ने सभी खतरों को जानते हुए भी मनुष्यमात्र के हित के लिए निर्भीकता से ईश्वरीय ज्ञान वेद का प्रचार किया”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

ऋषि दयानन्द सत्य की खोज करने अपने पिता के घर से निकले थे और उन्होंने देश देशान्तर का भ्रमण करके अनेक विद्वानों, योगियों, ज्ञानियों की सगंति सहित देश के अधिकांश स्थानों भर उपलब्ध वेद एवं सभी प्रकार के धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन व उनका मनन किया था। सद्ज्ञान व सच्चे योग को प्राप्त करने के लिए उन्होंने देश के अनेकों स्थानों पर जाकर वहां के समाज व व्यक्तियों के सम्पर्क से उन्हें सामाजिक स्थिति का ज्ञान भी हुआ था। देश और समाज मुख्यतः हिन्दुओं के पतन के कारणों पर विचार करने का अवसर भी उन्हें मिला था। योग व ध्यानोपासना में वह दक्ष हो चुके थे और विद्या प्राप्ति की उनकी इच्छा अभी शेष थी जो सन् 1860 से सन् 1863 के मध्य लगभग तीन वर्ष मथुरा के स्वामी विरजानन्द सरस्वती के सान्निध्य में अध्ययन करने पर पूरी हुई थी। विद्या पूर्ण कर लेने के बाद उनके सामने अपने भविष्य के कार्यों के निर्धारिण का अवसर था। वह अद्वितीय ब्रह्मचारी और संन्यासी तो पहली से ही थे, इस कारण अब वह किसी सांसारिक कार्य में तो प्रवृत्त हो ही नहीं सकते थे। ऐसी स्थिति में हमें उनके जीवन में जो विकल्प दृष्टिगोचर होता है वह यह कि वह एक आश्रम खोलते और और वहां योग व ध्यान सहित अपने गुरु के समान संस्कृत के आर्ष व्याकरण सहित कुछ वेद और वेदानुकूल प्रमाणिक ग्रन्थों का अध्ययन कराते। ऐसा यदि करते तो देश की स्थिति में कोई मौलिक व विस्तृत परिवर्तन, बदलाव व समाज सुधार आदि का लाभ न होता। पूरा देश अविद्या, अज्ञान, कुरीतियों, अनैतिक परम्पराओं, मिथ्या विश्वासों, परस्पर अन्याय व शोषण सहित अनेकानेक सामाजिक व्याधियों से ग्रस्त था।

देश और समाज की यह स्थिति स्वामी दयानन्द जी को भी ज्ञात थी और उनके गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी को भी प्रत्यक्ष थी। सन् 1863 में गुरु दक्षिणा के अवसर पर स्वामी जी अपने गुरुजी की प्रिय वस्तु लौंग की व्यवस्था करके उनके समीप उपस्थित हुए और उन्हें लौंग भेंट कर उनसे वहां से जाने की आज्ञा मांगी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी विरजानन्द जी ने इस विदाई व दीक्षा की घड़ी को विचार कर गहन मंथन किया था। स्वामी जी के विदा मांगने पर उनकी वाणी ने स्वामी दयानन्द के सामने देश के पतन और उसके प्रमुख कारण अविद्या की चर्चा की। लगता है कि उन्होंने कहा होगा कि सृष्टि के आरम्भ से महाभारतकाल व उससे कुछ पूर्व वर्षों तक आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य पूरे विश्व पर रहा और अब उन्हीं की सन्तानें ईसाई, मुसलमानों सहित अविद्याग्रस्त पण्डे पुजारियों की गुलाम बनी हुईं हैं और ये सभी लोग उन ऋषि पुत्र-पुत्रियों का उनकी अज्ञानता के कारण शोषण और दोहन कर रहे हैं। इन बुराईयों से निवृत्ति का एक ही उपाय है और वह है वेदों का प्रचार कर अविद्या का नाश करना। उन्होंने कहा होगा कि दयानन्द ! तुम इस कार्य को करने के लिए सर्वथा उपयुक्त, सक्षम व समर्थ हो। मैं तो अपने जीवन में चाह कर भी प्रज्ञाचक्षु होने के कारण इस कार्य को कर नहीं सका। मैं चाहता हूं कि तुम यह कार्य को मनसा-वाचा-कर्मणा करो। यही कार्य तुम्हें यशस्वी व महान् बनायेगा। यह तुम्हारा कर्तव्य भी है और दायित्व भी। इसकी उपेक्षा देश व समाज सहित तुम्हारे अपने लिए भी अहितकर व हानिप्रद हो सकती है। इस कार्य के लिए मेरा आर्शीवाद और शुभकामनायें तुम्हारे साथ हैं। ऋषि दयानन्द का यह गुण आरम्भ से ही दिखाई देता है कि वह किसी भी विषय व समस्या के निवारण के लिए तत्क्षण निर्णय ले लेते थे। गुरु ने कहा और स्वामी जी ने विचार करने में किंचित विलम्ब नहीं किया। गुरुजी से आद्र स्वर में बोले गुरु जी मैंं आपके परामर्श और आज्ञानुसार ही अपना शेष जीवन वेद और ज्ञान के प्रचार प्रसार में लगाऊंगा और देश व समाज को अविद्या से मुक्त करने के लिए प्राणों का मोह त्याग कर भी हर सम्भव प्रयत्न करूंगा। गुरु जी यह उत्तर सुनकर गदगद हुए होंगे। स्वाभाविक है कि उनकी आंखों से अश्रुधारा भी प्रवाहित हुई होगी। इतिहास में ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं है। यदि होता तो यह देश गुलाम कभी न हुआ होता। स्वामी विरजानन्द जी विवेकशील होने पर भी ऐसी अद्भुद परिस्थिति में शिष्य की भीष्म प्रतिज्ञा को सुनकर भाव विह्वल हुए होंगे ओर अपनी आत्मा से स्वामी दयानन्द जी को कोटिशः आशीर्वाद दिये होंगे।

 स्वामी जी ने अपने गुरु को दिए वचनों को ध्यान में रखकर अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि करने की योजना तैयार की। इसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने वेद प्राप्त किये। उनका गहनता व गम्भीरता से पारायण किया। उन्होंने पाया कि वेद का एक एक शब्द ईश्वरीय ज्ञान के अनुरूप एवं प्रामाणिक है। परवर्ती मनुष्य निर्मित साहित्य में वेदों के विचारों व भावनाओं जैसी उच्चता नहीं है। उन्होंने वैदिक सिद्धान्तों और मान्यताओं के आधार पर जब पुराण, कुरान, इंजील, बौद्ध व जैन मतों के ग्रन्थों का अवलोकन व अध्ययन किया तो वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इन सभी ग्रन्थों में सत्यासत्य विद्यमान है। धार्मिक साहित्य में असत्य विष के समान हानिकर होता है। उन्होंने वेदों की सत्य व अकाट्य मान्यताओं को देशवासियों व समाज के सम्मुख अपने व्याख्यानों, लेख व ग्रन्थों सहित प्रस्तुत किया और इतर मत के विद्वान लोगों को वार्तालाप व शंका समाधान हेतु आमंत्रित किया। अविद्याग्रस्त मतों की मिथ्या व अवैदिक असत्य मान्यताओं का खण्डन भी उनके अज्ञान के उन्मुलन व मानव जाति की उन्नति किंवा सुख के लिए किया। समाज के निष्पक्ष और बुद्धिमान लोग उनके विचारों से प्रभावित होने लगे। उनकी संख्या बढ़ने लगी। वह देश भर में जा जाकर प्रचार करने लगे ओर जिससे वेदानुयायियों की संख्या में वृद्धि का क्रम जारी रहा। इसी बीच स्वामी जी ने काशी में 16 नवम्बर, सन् 1869 को मूर्तिपूजा की अवैदिकता पर काशी के 30 से अधिक शीर्ष पण्डितों से शास्त्रार्थ किया जिससे महाभारतकाल के बाद पहली बार लोगों को ज्ञात हुआ कि मूर्तिपूजा का विधान वेदों में नहीं है। वेद की विचारधारा सभी प्रकार की मूर्ति अर्थात् जड़ पूजा के विरुद्ध है। स्वामी जी ने वैदिक विचारधारा को जन जन तक पहुंचाने के लिए सत्यार्थप्रकाश, पंचमहायज्ञविधि, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, गोकरूणानिधि, व्यवहारभानु, आर्योद्देश्यरत्नमाला सहित वेदभाष्य का कार्य भी किया जिसे बुद्धिमान धार्मिक निष्पक्ष लोगों ने अपनाया व उनके अनुयायी बन गये।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने अनुयायियों के अनुरोध पर 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई नगर में वेदों के स्थाई प्रचार व प्रसार हेतु आर्यसमाज की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य वेद प्रचार और अविद्या का नाश सहित विद्या की वृद्धि करना व सर्वत्र सत्य को प्रतिष्ठित करना था। स्वामी दयानन्द जी ने वह सभी कुछ किया जिससे की संसार से धर्म व समाज के क्षेत्र में विद्यमान अविद्या व कुपरम्परायें समाप्त हो जायें। एक व्यक्ति जितना कार्य कर सकता है उन्होंने किया और उसके शुभ परिणाम भी हमारे सामने हैं। आज कोई मत अपनी धर्म पुस्तक व परम्पराओं की वैसी शेखी नहीं बघार सकता जैसी की वह स्वामी दयानन्द जी के समय में बघारा करते थे। ज्ञान, तर्क व युक्ति तथा सृष्टिक्रम की दृष्टि से वेद और आर्यसमाज की मान्यतायें सत्य एवं अखण्डनीय हैं। वैदिक धर्म वह धर्म है जो धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को अपना लक्ष्य व प्राप्तव्य बताता है। यह वस्तुतः वैदिक धर्म के पालन से ही प्राप्त भी होता है। इनकी प्राप्ति की विस्तृत योजना व कार्य विधि ऋषि दयानन्द ने अपने अनेक ग्रन्थों में दी है जिसमें पंचमहायज्ञविधि एवं संस्कारविधि ग्रन्थ मुख्य हैं। ऋषि दयानन्द ने वैदिक धर्म के जिन सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का प्रचार किया उसके सम्मुख अन्य सभी मत व पंथ बौने सिद्ध होते हैं। वह सत्य की कसौटी पर सत्य सिद्ध नहीं होते। यही कारण है कि किसी मत, पंथ व सम्प्रदाय में आर्यसमाज की किसी मान्यता व सिद्धान्त पर आक्षेप करने की शक्ति व साहस नहीं होता। अतीत में किसी ने यदि आक्षेप किया भी तो आर्यविद्वानों ने उसका समुचित उत्तर व समाधान किया है। वैदिक धर्म वा आर्यसमाज के सिद्धान्त अकाट्य, सर्वजनहितकारी एवं उपादेय हैं। वैदिक धर्म ही एकमात्र ईश्वरीय, शाश्वत व सनातन तथा सत्य सिद्धान्तों पर आधारित प्रामाणिक धर्म वा मत है, इतर कोई नहीं है। वैदिक धर्म संसार के मनुष्यों का आदि, वर्तमान और सृष्टि के प्रलय काल से पूर्व तक का असत्य से सर्वथा रहित पूर्ण सत्य व वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुरूप धर्म है जिसका सभी मनुष्यों को अपने मत व आचार्यों के पूर्वाग्रहों को नजरंदाज कर ग्रहण व उसी का आचरण करना चाहिये।

 ऋषि दयानन्द ने विद्या अर्जित कर संसार से अज्ञान व अविद्या को मिटाने का सफल प्रयास किया। उन्हें यह ज्ञात ही था कि वह शत प्रतिशत सफल भले ही न हो, उसका आंशिक प्रभाव तो देश व समाज पर पड़ेगा ही। वह यह भी जानते थे कि ईश्वर भी वेद प्रचार का जन जन में प्रचार चाहता है और उनके लिए ऐसा करना ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है। स्वामी दयानन्द जी यह भी जानते थे कि वेद प्रचार का कार्य जोखिम भला कार्य है। इस कार्य में पद पद पर खतरा है। विरोधी व विपक्षी मत वाले उनकी जान के दुश्मन बन जायेंगे। उनका जीना हराम हो जायेगा। परन्तु देश व समाज के उपकार, मानव कल्याण तथा इन्हें आत्मा का धर्म मानने के कारण स्वामी जी ने सभी व किसी विपरीत प्रभाव पर ध्यान नहीं दिया और एकनिष्ठ होकर अपने कार्य पर लगे रहे। ईश्वर ने उन्हें सन् 1863 से 1883 तक 20 वर्षों का समय दिया। इन बीस वर्षों में उन्होंने जो कार्य किया वह अनेक आत्मायें सहस्रों जन्म लेकर भी नहीं कर सकती। इसी कारण हम उनके मानव उत्थान और सबकी सुख, समृद्धि तथा ईश्वर की प्राप्त कराने के कार्यों के प्रशंसक एवं अनुयायी हैं। हम उनके सिद्धान्तों को यथासम्भव अपनाते भी हैं व प्रयास करते हैं कि दूसरों को भी उससे परिचित एवं लाभान्वित करायें। उसी हेतु की पूर्ति के लिये यह लेखन का कार्य कर रहे हैं। ईश्वर सभी देशवासियों को सद्बुद्धि दे। सभी सत्य मत का ग्रहण व असत्य मतों का त्याग करें। सभी अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करें। सभी असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर और मृत्यु से अमृत अर्थात् मोक्ष की ओर अग्रसर हां, यही ऋषि दयानन्द जी को अभीष्ट था। वही सब आर्यों को भी अभीष्ट है। मनुष्यमात्र के कल्याण की भावना की कीमत स्वामी दयानन्द जी को अपने जीवन का बलिदान देकर चुकानी पड़ी। वह जिनके कल्याण के लिए काम कर रहे थे, उन मूर्ख लोगों ने ही उन्हें विष दे दिया। जोधपुर राज्य की ओर से भी उनकी चिकित्सा पर उचित ध्यान नहीं दिया गया। डा. अलमर्दान की चिकित्सा से भी रोग बढ़ा व स्वामी जी के स्वास्थ्य को हानि हुई। स्वामी जी का अनुयायी अचानक उनकी रुग्णावस्था के समय जोधपुर पहुंच गया और उसने समाचार पत्र में सूचना प्रकाशित करा दी। इस समाचार की पुष्टि में कुछ ऋषि भक्त अजमेर से जोधपुर पहुंचे तो स्वामीजी के रोग की तीव्रता व दयनीय अवस्था को देखा और देश भर के आर्यों को तार दे देकर सूचित किया। मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उनकी उपयुक्त चिकित्सा की गई परन्तु रोग इतना बढ़ा दिया गया व बढ़ गया था कि वह स्वस्थ न हो सके। ईश्वर, वेद व सत्य के प्रचार व सत्य मनवाने का संसार का सबसे बड़ा आग्रही विरोधियों के वैमनस्य का ग्रास बन गया। देश व संसार भविष्य में उनके जीवन से होने वाले लाभों से सदा सदा के लिए वंचित हो गये। यह हमारा हतभाग्य ही था कि हम स्वामी दयानन्द जी के जीवन की रक्षा नहीं कर पाये। इत्योम् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**